क्या भूलूं क्या याद करूं में प्रेम एवं जीवनसंघर्ष

रवीन्द्रनाथ मिश्र

'क्या भूलूं क्या याद करूं' बच्चन के मानव भवन की आधारशिला है। जिस पर उनकी आत्मकथा का मार्मिक, रोचक, मौलिक, काव्यात्मक, कौतूहलपूर्ण प्रासाद निर्मित है। बच्चनजी ने अपनी इस आत्मकथा में प्रारंभिक जीवन के विभिन्न पन्नों को बड़ी संजीदगी एवं निश्चल भाव से रोचक, सरसपूर्ण एवं संवेदनात्मक ढंग से पलटा है। जिसमें उनका परिवार, परिवेश, समाज, शिक्षा, संस्कृति, राजनीति, धर्म-दर्शन आदि सब एक-एक कर जीवंत हो उठे हैं। उनमें जहां एक ओर कथा की कौतूहलता, उत्सुकता, रोचकता है तो वहीं दूसरी ओर कविता की भावप्रवणता और व्यंजनात्मक्ता भी है। बच्चन जी ने जीवन के दुःख-दर्दो, संघर्षों, उतार-चढावों, प्रेम-प्रसंगों आदि को मानवीय धरातल पर अभिव्यक्ति प्रदान की है। यही कारण है कि उनकी आत्मकथा हिंदी साहित्य में मील के पत्थर के रुप में साबित हुई।

प्रस्तुत आत्मकथा में बच्चन ने अपने जीवन के भोगे हुए यथार्थ एवं निजी अनुभूतियों को वाणी दी है। उन्होंने अपने जीवन की घटनाओं और प्रसंगों का उल्लेख निःसंकोच भाव से किया है, जिनका गहरा संबंध उनके लेखन और व्यक्तित्व के विकास से रहा है। इसमें उनकी जाति, परिवार, शिक्षा, परिवेश और मित्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेखक ने अपनी निजता को बड़े बेबाक ढंग से सार्वजनिक किया है। तटस्थता, कौतूहलता, रोचकता, आत्मालोचन, युगीन परिवेश के साथ तालमेल आदि आत्मकथा की कुछ खाश बातें हैं। इनके बिना आत्मकथा की रचना संभव नहीं होती। बच्चन कुछ अपवादों को छोड़कर उक्त कसौटियों पर खरे उतरे हैं। उन्होंने अपने समय के समसामयिक परिवेशगत युगीन बोधों एवं हिंदी साहित्य और साहित्यकारों की चर्चा सहज ढंग से की है। इस आत्मकथा में उनका कुल, वंश, जाति, पारस्परिक संबंध आदि विशेष रुप से मुखर हुआ है। फिर भी लेखक ने व्यक्ति, समाज, धर्म, दर्शन आदि से जुड़े अनेक मुद्दों पर गम्भीरता से विचार किया है। आत्मालोचन की सतत संवेदनशील और निर्मम प्रक्रिया बच्चन की इस आत्मकथा में अनेक जगह दिखाई पड़ती है।

आत्मकथा लेखन के संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है - "कभी कभी सुभीते से बैठकर, सुधियों की इस रील को इच्छानुसार, इच्छित गति से, सीधा-उल्टा चलाकर, रोककर, जिए हुए को फिर जीकर नहीं-जिए हुए को फिर जीना असम्भव भी है - जिए हुए को अधिक व्यापकता से, अधिक गम्भीरता से, अधिक सार्थकता से, अर्थात कला में, सृजन में जीकर, इन रुप-रंगों, ध्वनियों, घटनाओं, भावनाओं में से कुछ को पकड़ा जा सकता है? पृ. ४१

प्रस्तुत आत्मकथा के आरंभ में लेखक ने पांच-छः सौ वर्षो पूर्व से कायस्थ परिवार की वंशावली को उत्तरप्रदेश के बस्ती जिले के अमोढ़ा नामक गांव के पाण्डेय उपजाति के ब्राह्मण से जोड़ा है। कालान्तर में उनके विस्थापन को दर्शाते हुए उनकी कमजोरियों और विशेषताओं का वर्णन किया है। बच्चन के पूर्वज निर्धन, निःसंतान और दुःखी मनसा के जीवन की कहानी का उल्लेख उन्होंने गुरु के आशीर्वाद से उनके जीवन में आए हुए परिवर्तनों से किया है। सम्पूर्ण कथा का केन्द्र इलाहाबाद शहर है। बच्चन ने जहां कायस्थ जाति को विद्या, ज्ञान, चिन्तन, कुशाग्र बुद्धि आदि गुणों से सम्पन्न बताया है, वहीं पर उनकी सामाजिक जातिगत, रुढ़ियों, परंपराओं, मान्यताओं,

बुराइयों आदि का यथार्थ चित्रण भी किया है। उन्होंने कायस्थ जाति के विषय में लोक कहावतों, मुहावरों का भरपूर प्रयोग किया है। जो बरम्हा कहुं राखैं टेक, न सौ बाम्हन न कायस्थ एक।

हौले-हौले दौड़ के काटैं, का जानैं पर पीरा,
पर लोहू के चाखन हारे कायस्थ औ खटकीरा। पृ. २५

कथा के मध्य में आत्मकथाकार ने जन्म, परिवार की परंपरा और उसकी स्थिति तथा शिक्षा और सामाजीकरण की भूमिका निभाने वाले प्रमुख व्यक्तियों की चर्चा की है। जिनसे कि वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रभावित हैं। उनमें कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरु, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर कतिपय स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियों आदि का नाम आता है। 'पुरुष सिंह जो उद्यमी, लक्ष्मी ताकरि चेरि, भाग्य भरोसे जे रहैं, कुपुरुष भाषहिं टेरि।' जैसी लोक कहावतों के साथ-साथ 'अजर, अमर, गुननिधि सुत होहू, करहुं बहुत रघुनायक छोहू। जैसी प्रसंगानुकूल तुलसीदास की चौपाइयों का जिक्र बच्चनजी ने अपनी आत्मकथा में जगह-जगह पर किया है। मौलवी शिक्षा की रटन्त विद्या का उल्लेख करते हुए वे संदर्भानुकूल अपनी रचना पंक्तियों को भी व्यक्त करते हैं -

'मैं छिपाना जानता, तो जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है, छल रहित व्यवहार मेरा।

लेखक जब अपनी आत्मकथा में प्रसंगानुकूल श्रमजीवी मुहल्ले में रहने वाले भिश्ती, हज्जाम, जर्राह, चिकवे, नैचा बांधने वाले, कुंजी लगाने वाले, छाता मरम्मत करने वाले, कलई लगाने वाले, पतंग साज आदि के घरों से निकलने वाली 'चुक चुक करती मुर्गियों और क्वक-क्वक करती बत्तखों तथा बाग में लगे आम, इमली, अमरूद, जामुन, शरीफे, करौंदे आदि का वर्णन करता हैं और इसके साथ ही 'अरे रामा कच्ची कली कचनार, छुअत डर लागै रे हरी ...जैसे कजरी, आल्हा एवं अन्य लोक गीत तथा समाज में विधवा की दारुण दशा, ससुराल में बहू की ताड़ना, अंतरजातीय रखैल आदि अन्य सामाजिक रीति-रिवाजों-परंपराओं का तो ऐसा लगता है कि वहां की आंचलिकता जैसे जीवंत हो उठी है।

आत्मकथा के मध्य कर्कल-चम्पा के वैवाहिक जीवन में लेखक अपनी तरुणाई के आवेग में रुपवती चम्पा की ओर सहज ही आकर्षित हो उठता है। कालान्तर में उनका प्रेम परवान चढता है। जहां वे सारी पारिवारिक और सामाजिक मर्यादाओं एवं मान्यताओं की जरा भी परवाह नहीं करते। 'उन थोडे से दिनों में हम जिस तूफान से गुजरे, जिस सैलाब में बहे, जिन भावनाओं की हमने सघनता जानीं, गहराइयां छुईं, जिन तनावों का कसाव झेला, खिंचाव सहा उन्हें यत्किंचित वाणी देने का दायित्व यदि मेरी कविता ने न ले लिया होता तो गद्य तो हाथ पर हाथ धर, हार मानकर बैठ जाता, हमारे छोटे से जग से जिसकी स्वर्ग बलाएँ लेता था बड़े से संसार को ईर्ष्या होती स्वाभाविक थी। उससे तो नभ के नक्षत्रों को, नियति को भी ईर्ष्या थी। ...आलोचना, व्यंग्य ; निन्दा, भर्त्सना, दोषारोपण, दूषणारोपण, आक्रोश, अभिशाप-सब हमने साहसपूर्ण, या दुनिया की नजरों में बेहयायी से ओढ लिए थे।"पृ. १६०

लेखक के जीवन में रोमांस और सर्जन के अंकुर लगभग एक ही साथ प्रस्फुटित हुए। सरस्वती, यंग इंडिया, मतवाला, प्रताप, चांद, वीणा, हंस, विश्वमित्र आदि पत्र-पत्रिकाएं जहां इनके ज्ञान की वृद्धि कर रही थीं, वहीं 'रुबाइयात उमर खैयाम' के अनुवाद से उनके जीवन और काव्य को एक नया आयाम मिल रहा था। घर की विपन्न दशा एवं कतिपय

अन्य कारणों से इनका विवाह १९ साल की आयु में श्यामा से १९२६ में हो गया। श्यामा मात्र १४ वर्ष की थीं, जिनके संबंध में बच्चन का कहना था- "श्यामा मेरे सामने बिलकुल बच्ची थी - भोली, नन्हीं, नादान, अनजान, हंसमुख, किसी ऐसे मधुवन की टटकी गुलाब की कली-नवल कलिका थी वह"- जिसमें न कभी पतझर आया हो, और न जिसने कभी कांटों की निकटता जानी हो।' (पृ. १७०) बच्चन श्यामा की सरलता, सहजता, कार्यकुशलता, सेवाभाव, कुलीनता, शिष्टता आदि गुणों पर मुग्ध थे।

> **उस लडकपन औ' जवानी के शुरु की,**
> **उलझनों को क्या बताऊं,**
> **भूलने का नाम वे लेती नहीं हैं**
> **मैं उन्हें कितना भुलाऊं । पृ. १७१**

लेखक ने श्यामा को पंत की 'उच्छवास' कविता में ही नहीं देखा बल्कि अपनी भावनाओं और कल्पनाओं में कई रंगों से सजाया। चम्पा की विरहानुभूति को मानो वे श्यामा के प्रेम में उडेल कर अतीत को भूल जाना चाहते थे। लेकिन दुर्भाग्य ने यहां भी उनका पीछा नही छोडा। अपने संघर्ष मय जिंदगी की जद्दोजहद तथा श्यामा के रोगग्रस्त होने के कारण बच्चन अधिकांश समय तक पत्नी से दूर रहकर भी उनकी देखभाल बराबर करते रहे। पति-पत्नी एक-दूसरे को क्रमशः Joy और Suffering कहकर पुकारते। उन्होंने लिखा है-'मुझे Suffering नाम देने में शायद श्यामा ने मेरे स्वभाव, मेरी प्रकृति, मेरे जीवन, मेरे व्यक्तित्व में बीज की तरह छिपे मेरे कवि को भी पहचाना था। शायद उसने समझ लिया था कि कवि तो साकार वेदना (Suffering) ही है। मैं जिस वेदना से गुजरा हूँ या गुजर रहा हूँ उससे कविता के बीज के लिए भूमि ही तो अपने अन्दर तैयार कर रहा हूं। वेदना के बिना मनुष्य का अहं नहीं टूटता, और अहं के टूटे बिना एक मनुष्य के हृदय से दूसरे मनुष्य के हृदय तक पहुंच नहीं होती, सेतु नहीं बनता।' इसके आगे वे लिखते हैं-'अहं के काटने के बाद जो चेतना शीश को उठाती है, उस पर पांव धरती है, उसी का नाम कवि है।' इस संदर्भ में बच्चन 'सीस काटि भुइं पै धरै, ताषर धारै पांव, दास कबीरा यों कहैं ऐसा होउ तो आव। कबीर के दोहे का उल्लेख करते हैं। अपनी तरुणाई और पत्नी की बीमारी के विषय में बच्चन 'कवि की बासना' की पंक्तियों को याद करते हैं-

> **'वासना जब तीव्रतम थी**
> **बन गया था संयमी मैं,**
> **है रही मेरी क्षुधा ही**
> **सर्वदा आहार मेरा। (प-.१९२)**

एक तरफ पत्नी का मायके में रोग शय्या पर होना और दूसरी तरफ अर्थाभाव के कारण 'बाबू प्रताप नारायण वल्द भोलानाथ का मकान नीलाम होना' लेखक के जीवन संघर्ष की करूण कहानी बयाँ करती है। कथा के मध्य से उनकी प्रेम और संघर्ष की कहानी पत्नी के मृत्यु पर समाप्त होती है। इसमें उनकी जाति, परिवार, मित्र, शिक्षक, साहित्यकार आदि अनेक लोगों की कथाएं शामिल हैं।

बच्चन के जिस कवि व्यक्तित्व से आज पूरा हिंदी संसार परिचित है-उसका स्रोत इस आत्मकथात्मक कृति में आसानी से ढूंढा जा सकता है। इसलिए इस आत्मकथात्मक कृति को पढने का अर्थ एक रचना का आस्वाद करना ही नहीं है, बल्कि उन मार्मिक स्थितियों से गुजरना भी है, जिसके कारण बच्चन को रचनात्मक व्यक्तित्व का निर्माण और विकास होता है। फलतः 'मधुशाला', 'मधुबाला', मधुकलश', 'निशा निमंत्रण' जैसी काव्यकृतियां रची जाती हैं। इनकी आत्मकथा से उस समय के समाज की जातिवादी व्यवस्था और धार्मिक संस्थाओं की महत्ता को तत्कालीन संदर्भों में आंका जा सकता है।

नायब साहब, राधाबुआ, बाबा, भोलानाथ, पिता प्रताप नारायण, पत्नी श्यामा, मित्र में आंका जा सकता है। नायब साहब, राधाबुआ, बाबा, भोलानाथ, पिता प्रताप नारायण, पत्नी श्यामा, मित्र कर्कल, चंपा, प्रकाशो, श्रीकृष्ण आदि की जिंदगी की सच्चाइयों का गहरा संबंध लेखक के जीवन और युगीन परिवेश से रहा है। बच्चन उनका आत्मालोचन अधिक करते हैं, प्रचार कम। इन संदर्भ में उनकी भावुकता यथार्थ के धरातल को स्पर्श करती हुई चलती है। समाज और राष्ट्र से अधिक उन्होंने परिवार और उसकी परंपरा, गांव, मित्र, पास-पड़ोस आदि को विशेष महत्व दिया है। बच्चन के जीवन में शिक्षकों और शिक्षा संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बचपन में उनके मौलवी द्वारा रटाई गई एक सूक्ति में 'कलम का अर्थ सच्चाई, ईमानदारी, न्याय, स्वाधीनता, आत्मसम्मान आदि बताया गया है। कलम का नाम निर्भीकता है, साहस है, विरोध है, विद्रोह है पर कलम नकारात्मक ही नहीं है, वह सकारात्मक भी है, वह संगीत है, शृंगार है, शोभा है, शान्ति है। वह जीवन की जीवन्तता है।' पृ. २२८

हरिवंशराय बच्चन की इस आत्मकथा में संघर्ष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है अस्तित्व रक्षा के लिए किया गया प्रयास। यह प्रयास जहां एक तरफ युगीन परिवेश को पूरी तल्खी के साथ चित्रित करता है, वहां दूसरी तरफ यह भी दिखलाता है कि किस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक विसंगतियों से आत्मकथा का नायक टकराता है, उनसे जूझता है और फिर मुक्त होकर आगे बढ़ जाता है। इसमें उनके परिवार की सारी परंपराएं और घटनाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इससे उनका नैतिक बल ही नहीं बढ़ता अपितु विपरीत परिस्थितियों में कार्य करने की ऊर्जा भी मिलती है। सुबह-शाम ट्यूशन करते हुए बच्चन ने शिक्षा ग्रहण की और साथ ही परिवार और बीमार पत्नी की देखभाल के दायित्व का निर्वाह भी किया। जिम्मेदारियों के बोझ तले उन्हे अपनी बीमारी की जरा भी चिंता नहीं रहती थी। वे लिखते हैं-

'मुझे जब कभी छोटी-मोटी बीमारी होती, जुकाम, बुखार, खांसी, सिर दर्द, तो मैं खाट पर न लेटताः और भी अपने से काम लेता। मुझे भरे भुड्ड बुखार में अपनी रात की ट्यूशनों पर जाने की याद है। बुखार की गर्मी और तेजी में तो मैं जोश से पढ़ाता-मजदूरी करके अपनी रोटी कमाने वाले को बीमार पड़ने का क्या अधिकार है, बीमारी अमीरों की हरमजदगी है, गरीबों को उसे अपने पीछे न लगाना चाहिए - लिखने में तो ऊंचा बुखार मुझे सब तरह से सहायक, प्रेरक और प्रोत्साहक लगता; एक तरह की आग, जिससे मेरी अनुभूतियों में ताप आता, जिसमें गल-पिघलकर मेरा हृदय ढलता; एक तरह की भट्ठी जो मेरे विचार, भाव, कल्पनाओं को उबाल देकर उच्छलित करती। पृ. २२९ सुबह-शाम ट्यूशन से लेकर 'चांद' पत्रिका में नौकरी जहां से महीने भर बाद बिना तनख्वाह दिए बाहर निकाल दिया जाता है। ईमानदारी के पेशे अध्यापकीय जीवन में भी उन्हें मजबूरी का शिकार बनकर २५ रुपये की जगह ६५ पर हस्ताक्षर करना पड़ता है। इससे तत्कालीन भ्रष्ट शिक्षा व्यवस्था को जाना जा सकता है।

बच्चन स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में गांधीजी के सरल, सहज स्वाभाव का वर्णन करते हुए उनके योगदान की चर्चा भी करते हैं। वे अपनी सामाजिक और सामंतवादी व्यवस्था से दुःखी प्रतीत होते हैं। सामाजिक रुप से बहिष्कृत अपनी जाति के यहां भोजन कर उन्होंने एक वैवाहिक समस्या को हल किया। इतना ही नहीं अस्पृश्य कही जानेवाली हरिजन जाति के यहां बच्चन ने भोजन भी किया। उनका मानना था कि मैं तो सामाजिक रुढ़ियों के कारण लछमनियां चमारिन के हाथ बेच दिया गया था। मैंने उसका दूध भी पिया। उनका मानना था कि

समाज सेवा के कार्य से जुडे हुए नाई, बारी, कहार, कोहार, बढ़ई, थरिकार आदि को परजा (प्रजा) कहना हमारी सामंती मानसिकता को दर्शाता है। सामंती समाज बहुत से छोटे-छोटे समंतों से निर्मित होता है, यहां तक कि हर सम्पन्न परिवार एक प्रकार का राजपरिवार हो जाता है और उसके ऊपर पलने वाले लोग उसकी प्रजा बने रहते हैं, और उसकी विपन्नता में भी उससे चिपके रहते हैं और उससे कुछ प्राप्त करने की आशा भी करते हैं। लेखक ने हिंदू समाज में जाति-व्यवस्था, छुआ-छूत, दीक्षा, शिखा-केश आदि की परंपरा को धर्म से जोडते हुए खुलकर इनका विरोध किया है। वे मानते हैं कि जाति व्यवस्था और छुआ-छूत का सबसे बड़ा कारण हिंदू धर्म और उसकी वर्णव्यवस्था है जो मंठ एवं मंदिरों के कारण समाज में व्याप्त रही हैं। यहां हम लेखक के प्रगतिशील विचारधारा से वाकिफ होते हैं।

क्या भूलूं क्या याद करूं में जन्म, मृत्यु, आत्महत्या आदि जैसे मुद्दों पर लेखक ने एक दार्शनिक की तरह विचार किया है। उनका कहना है कि किसी की मृत्यु से दुनिया नहीं बदल जाती है बल्कि वह यथावत चलती रहती है। पर दुनिया, दुनिया है। दुनिया के लिए कोई अनिवार्य नहीं। इधर लाश उठती हैं, उधर दुनिया के काम यथापूर्व होने लगते हैं। शरीर रहने तक मनुष्य को क्या-क्या सहना पडता है। शरीर छुटा कि सारे दुःख-दर्द, चिंताएं-व्यथाएं, शोक-संताप विलुप्त! पर क्या आत्महत्या इन कष्टों से सहज मुक्ति का उपाय है? लेखक का मानना है कि नहीं! क्योंकि आत्महत्या के बारे में जो सोचता है, वह मेरी दृष्टि में निरात्मा है। निरात्मा यानी कि जिसके अंदर सोचने, समझने और महसूस करने की ताकत खत्म हो जाती है और चुनौतियों से घबरा रहा हो, वह कायर ही हो सकता है। वस्तुतः आज देश में सूचना, तकनीकी, पाश्चात्य संस्कृति और भौतिकता की तपन और घुटन में आत्महत्याओं की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है।

अनुभूति, विचार, भाषा और शैली की दृष्टि से 'क्या भूलूं क्या याद करूं' का हिंदी आत्मकथा साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इसमें उन्होंने अपने अतीत के जीवन को ही नहीं व्यक्त किया है अपितु उसको आत्मपरीक्षण के साथ विश्लेषित भी किया है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि आत्मकथा लिखना एक चुनौती भरा कार्य है। इसका कारण है कि लेखक को इसमें अत्यन्त तटस्थ भाव से अपने गुणों-दोषों को विवेचित करना होता है। बच्चन इस कसौटी पर खरे उतरे हैं। उन्होंने आत्मकथा के महत्वपूर्ण तत्वों को ध्यान में रखते हुए, तत्कालीन सामाजिक रुढ़ियों, मान्यताओं, समस्याओं आदि के खिलाफ अपनी आवाज भी बुलंद की है। बच्चन द्वारा वर्णित एवं भोगी हुई समस्याएं आज भी हमारे समाज में विद्यमान हैं। लेखक ने अपने जीवन के प्रेम और संघर्ष को युगीन बोधों के साथ सहज, सरल एवं निष्कपट भाव से प्रकट किया है। यही कारण है कि बच्चन की 'मधुशाला' की भांति उनकी आत्मकथा भी लोगों के बीच काफी लोकप्रिय हुई।

❖ ❖ ❖